परम कल्याण बोध

परम कल्याण बोध

परम कल्याण बोध

श्री मुख वाक्यामृत श्री सतगुरु
मंगत रामजी महाराज

प्रकाशक :

संगत समता वाद

समता योग आश्रम, जगाधरी (ज़ि० अम्बाला)

१९५७

मुद्रक—श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दरियागंज, दिल्ली

प्रस्तावना

यह "परम कल्याण बोध" प्रसंग अध्यात्मिक उन्नति का सार निर्णय है। इसका विचार और अभ्यास करने से तमाम मानसिक विकारों से पवित्रता प्राप्त होती है। सब गुरुमुख सज्जन दृढ़विश्वास से स्वाध्याय करके अपना जीवन उन्नत करें।

"संगत समतावाद"

विषय सूची

महा मन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यम् निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरुषा सरब व्यापक कल्याण
मूरत परमेश्वराय नमस्तं ॥

मंगला चरण

नारायण पद बन्दिए, ताप तपन होय दूर।
नमो नमो नित चरण को, जो सरब अधार हजूर ।।
हिरदे सिमरो नाम को, नित चरणी करो दंण्डौत।
सत शरधा से पूजिये, रख सत्गुरु की ओट ।।
दुबिधा मिटे मंगल होए, जो चरण कंवल चित धार।
ऋद्धि सिद्धि आवे घर माहीं, पावें जय जय कार ।।
साचा ठाकुर सरब समराथा, अपरम शक्ति अपार।
'मंगत' कीजे बन्दना, नित चरणी बलिहार ।।
सत मार्ग सोझी मिली, तन मन भया निहाल।
गवन मिटी संसार की, सत्गुरु मिले दयाल ।।
बार बार करूं बन्दना, सत्गुरु चरणी माहीं।
'मंगत' सत्गुरु भेंट से फेर गरभ नहीं आहीं ।।

परम कल्याण बोध

१. शरीर-रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव अपनी कल्याण की खातिर अधिक-से-अधिक यत्न करता हुआ शरीर की यात्रा को व्यतीत करता है; मगर अन्त को अधिकसंकट लेकर शरीर से जुदा होता है; असली शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है; ये ही अदभुत संसार का चक्र है। सत्-विचार और सत् निदिध्यास के बगैर इस भयानक काल-चक्र में निर्भय शान्ति को प्राप्त होना अति कठिन है।

२. पाँच तत्त्वों का शरीर धारण कर, बुद्धि पाँच कर्म-इन्द्रियों और पाँच ज्ञान-इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त होकर नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल कर्म करती है। चूँकि इन्द्रियों के भोग क्षण-भंगुर हैं; इस वास्ते इनमें निर्भय शान्ति के बजाय अधिक खेदवान रहती है। यानि बुद्धि इन्द्रियों के भोगों को परम सुख रूप जान करके अधिक-से-अधिक दिव्यभोग प्राप्त करने का यत्न करती है और प्राप्त करके भी नित्य ही अधीर और क्लेशवान रहती है, यह ही भयानक दुःख रूप संसार है।

३. सार निर्णय यह है, कि बुद्धि नाशवान दुःख-रूप इन्द्रियों के भोगों में अविनाशी सुख प्रतीत करती हुई नित्य ही

इन्द्रियों के भोगों में आसक्त हो करके नाना प्रकार के भोग भोगती है, मगर नित्य ही अशान्त और भयभीत रहती है; आख़िर शरीर विनाश को प्राप्त होता है और बुद्धि अधिक संकट लेकर इस शरीर से जुदा होती है; फिर वासना अनुसार दूसरे शरीर को धारण करती है। इसी तरह शारीरिक भोगों की आसक्ति को धारण करके अनेक योनियों में विचरती है और दुःख-सुख में भ्रमती रहती है। ये ही आवागवण रूप संसार है।

४. ऐसी कालचक्र-रूप जीवन यात्रा को सही समझना और फिर सही यत्न करना ही मनुष्य-जन्म का उत्तम कर्तव्य है। यानि इन्द्रियों के भोगों का अन्त अति संकट रूप जानना और इनमें मर्यादापूर्वक विचरना ही मनुष्य जीवन की उच्चता है।

५. परम दुःख-रूप इन्द्रियों के भोगों की वासना से छूटने के वास्ते केवल साक्षी स्वरूप आत्मा के विश्वास और निदिध्यास की दृढ़ता ही कल्याण के देने वाली है। इसी को सत्य मार्ग कहा गया है। यानि परम-कल्याण, परम-पवित्रता, परम-आनन्द, नित्य-स्वरूप, सर्वमयी पूर्ण अखण्ड शान्ति एक आत्म-स्वरूप को ही जानना और नित्य ही उस परम-तत्त्व के परायण होना ही इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति से छुटकारा देने वाला यत्न है, और इसी निश्चय को आस्तिकवाद कहते हैं; यानि एक आत्मा के बग़ैर सब संसार-प्रपञ्च का अन्त परम दुःख और भय-

स्वरूप जानकर अधिक-से-अधिक यत्न करके सत्-तत्व की खोज में दृढ़ होना ही आस्तिकपन है।

६. शारीरिक भोग नाशवान होने के कारण नित्य अशान्ति और अधिक वासना के खेद को प्रकट करने वाले हैं। जो परम दुःख-स्वरूप हैं। ऐसी शारीरिक यात्रा को समझ करके नित्य ही जीवन-रूप परम-तत्व आत्मा का विश्वासी और निदिध्यासी होना ही परम कल्याण को देने वाला निश्चय है।

७. जब तक इन्द्रियों के भोगों का अन्त दुःख रूप समझ में ना आवे और ना ही परम-तत्व आत्मा की परम प्रधानता निश्चय में दृढ़ होवे, तब तक बुद्धि मद्-वाद को धारण करके नास्तिकपन में विचरती है और अधिक वासना के खेद को धारण करके इन्द्रियों के भोगों की अति चेष्टा में मलीन हो करके नित्य ही विकारों की अग्नि में जलती रहती है। ये ही महा विकराल परम दुःख-रूप जीवन का स्वरूप है। यानि इन्द्रियों के भोगों की अति आसक्ति में दृढ़ हो करके नित्य ही प्रतिकूल कर्म करके अपने-आप की घातक बनी रहती है। ऐसा जीवन ही परम अन्धकार और परम दुःख स्वरूप है।

. वास्तव में इन्द्रियों के भोगों की वासना ही परम अशान्ति के देने वाली है और सत्-स्वरूप आत्मा में श्रद्धा और प्रेम की नेःचलता के नाश करने वाली है; मगर अज्ञानवश हुई हुई बुद्धि केवल इन्द्रियों के भोगों को ही परम-

सुख प्रतीत करती हुई सत्-स्वरूप आत्मा के निश्चय से हीन हो करके परम दुःख जाल में विचरती है। ये ही भव दुस्तर मार्ग है।

९. इस अधिक दुस्तर जीवन-यात्रा को समझ करके नित्य ही इन्द्रियों के भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके सत्-स्वरूप का पूर्ण विश्वासी होना ही निर्मल कल्याण के देने वाला सत्-यत्न गुरूमुख मार्ग है।

१०. अधिक निर्मल बुद्धि से इस नाशवान जीवन-यात्रा के सही स्वरूप को समझ करके एक अविनाशी स्वरूप के परायण होना ही यथार्थ यत्न है; जो इस भयानक कर्म-जाल से छुटकारा दिलाने वाला और निर्भय शान्ति के देने वाला है।

११. अधिक इन्द्रियों के भोगों से अधिक वासना का जाल बढ़ता है; जो तीन काल अशान्ति और भय के देने वाला है; ऐसा निश्चय होना ही श्रेष्ठ-बुद्धि का लक्षण है। सत्-स्वरूप के विश्वास से हीन हो करके इन्द्रियों के भोग ही केवल सुख-स्वरूप जानने और इनमें दृढ़ निश्चय से विचरना ही असली मूढ़ता है, जो तीन काल सन्ताप के देने वाली है।

१२. इन्द्रियों के भोगों की अधिक वासना ही काल स्वरूप है। जो पलक-पलक में बुद्धि को भरमाती है और नित्य ही विलक्षण कर्म करने की ख़ातिर मजबूर करती है। ऐसे जीवन के भेद को जिसने नहीं जाना है, वह पशु से भी

नीच है ।

१३. बुद्धि केवल इन्द्रियों के भोगों की वासना में आसक्त हो करके अधिक भोग प्राप्त करने में यत्न-प्रयत्न करती है और इसी में असली शान्ति प्रतीत करती है । मगर ऐसे अन्धकारमयी यत्न में शान्ति प्राप्त होनी जानना एक निहायत मूढ़ता है, क्योंकि जो नाश होने वाली वस्तु है, वह अपने आप में अशान्त-स्वरूप है । उसकी प्राप्ति से बजाय शान्ति के अधिक अशान्ति प्राप्त होती है; ऐसा निश्चय करना ही निर्मल विवेक है ।

१४. जब बुद्धि शरीर और इन्द्रियों के भोगों की विनाश प्रतीत करती है और इसमें केवल खेद ही जानती है। तब सत्-परायण होने के यत्न में दृढ़ होती है; यानि तमाम आन्तरिक दोषों से पवित्र होने का यत्न धारण करके एक अखण्ड अविनाशी सरूप के परायण होती है । ऐसे निश्चय को ही निश्चयात्मक बुद्धि कहा गया है ।

१५. जब दृढ़ निश्चय से शरीर और शरीर के सुख नाश-रूप प्रतीत होने लगते हैं, तब बुद्धि संसार की मलीन कामनाओं का त्याग करके केवल अखण्ड भावना से सत् विश्वास और सत् अनुराग में दृढ़ होती है । ऐसी भावना वाले को ही असली जिज्ञासु कहते हैं ।

१६. अज्ञान अवस्था में बुद्धि अनय भावना करके शरीर और शारीरिक भोगों की कल्पना में दृढ़ रहती है । और एक पलक मात्र भी भोग वासना से विलग नहीं होती है । ऐसे

ही जब बुद्धि शरीर और शारीरिक सुखों को क्षण-भंगुर जान लेती है। उस वक्त अखण्ड भावना करके सत सरूप के परायण होने का यत्न करती है, यानी शारीरिक सुखों का लोभ त्याग करके केवल अविनाशी सुख अन्तर सरूप आत्मा में नेहचलता धारण करती है। ऐसे यत्न को ही अभ्यास कहते हैं।

१७. जब बुद्धि तमाम शारीरिक कर्मों के द्वन्द्वफल को सत सरूप के समर्पण करती है, यानी तमाम कर्मफल को प्रभु आज्ञा में देखती है, उस वक्त भयानक वासना के जाल से पवित्र होकर के निमित्त मात्र कर्म निश्काम सरूप में करती हुई केवल एक अखण्ड सरूप के परायण होती है, ऐसे निश्चय को ही ईश्वरभक्ति कहते हैं।

१८. बुद्धि कर्त्तापन को धारण करके कर्म और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति में दृढ़ हो करके नित ही इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा में चलायमान होती रहती है। और यह ही अज्ञानमई जीवन है। इस भ्रम अन्धकार से पवित्र होने की खातिर केवल सत परायणता की दृढ़ता है। यानी शरीर और शारीरिक कर्म केवल सत आधार में ही देखने और अपने-आपके कर्त्तापन का त्याग करना, ऐसे निश्चय की दृढ़ता को ही सत्याग्रह कहते हैं।

१९. ज्यों-ज्यों बुद्धि कर्त्तापन का त्याग करती हुई तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पन करती है, त्यों-त्यों तमाम वासना के जाल से पवित्र हो करके निर्वास स्वरूप

आत्म आनन्द में नेहःचल होती है। ऐसी स्थिति को ही त्याग कहते हैं।

२०. जब बुद्धि केवल एक अविनाशी नाम के परायण होकर के असत नामरूप कल्पना को त्याग करती है और अखण्ड भावना करके एक अबिनाशी सरूप को ही कर्त्ता हर्ता जान करके सत सिमरण में नेहचल होती है। उस वक्त अन्तर से नाम रूप संकल्प-रूपी संसार का अभाव हो जाता है, और एक अखण्ड अविनाशी शब्द का अन्तर में बोध प्राप्त होता है। जो परम आनन्द सरूप है, वासना और कर्म से पवित्र है।

२१. जब अन्तर में सत सरूप का अनुभव होता है, तब बुद्धि तमाम शारीरिक कर्मों से निर्बन्धन हो करके नेहःकर्म सरूप आत्मा में नेहचल होती है। यह ही स्थिति परम सुख का सरूप है। जिसमें वासना और कर्म का खेद नहीं है। ऐसी स्थिति को प्राप्त करके बुद्धि परम शान्ति को प्राप्त होती है। जो वास्तविक पूर्ण सरूप है।

२२. सार निर्णय यह है कि बुद्धि कर्तापन त्रैगुण अहंकार को धारण करके नाना प्रकार के कर्मफल भोग की आसक्ति में नित ही चलायमान होती रहती है। यह ही खेदयुक्त जीवन अवस्था है। इससे पवित्र होने की ख़ातिर एक आत्मा का विश्वासी और अभ्यासी होना ही परम साधन है। ऐसे निश्चय से जो गुणी सत सरूप के परायण होता है, यानी तमाम शारीरिक शक्ति और शारीरिक दुःख

व सुख केवल अबिनाशी सरूप अखण्ड शब्द आत्मा के आधार ही देखता है। और परम पवित्र भावना से उस सरूप करके अन्तर में आत्म चिन्तन में दृढ़ होता है। ऐसे दृढ़ अनुराग के बल से द्वन्द्व रूपी खेद से निर्मल हो करके बुद्धि सत पद में विश्राम पाती है। जो परम कल्याण मई अवस्था है।

२३. हर वक्त शारीरिक यात्रा को समझते हुए केवल सत परायण होने का यत्न करना ही मानुष जन्म की उच्चता है। यानी तमाम शारीरिक भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके सादगी, सत्य, सत स्मरण, सत संग और सेवा में अपने-आप को दृढ़ करते हुए तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी चाहिए, जो परम पद अखण्ड शान्ति को देने वाली है।

२४. एक सत सरूप की दृढ़ परायणता से तमाम मानसिक दोष नाश को प्राप्त होते हैं। ऐसा निश्चय धारण करके नित सरूप अबिनाशी शब्द की अन्तर में परम सूझ प्राप्त करनी चाहिए, क्योंकि आत्मा ही निर्वास नित सरूप और नेह-कर्म है। शरीर नित ही नाशसरूप वासना और कर्म खेद सरूप है। ऐसे यथार्थ निर्णय को धारण करके, शरीर मद का त्याग करके केवल सत परायण होना ही तमाम दुखों से छुटकारा हासिल करने वाला मार्ग है।

२५. सत अनुराग के बल से तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जो

वासना का सरूप है। इन पर विजय प्राप्त करनी ही परम पवित्रता और परम उच्चता है, यानी सत नाम की दृढ़ता से तमाम शारीरिक कर्म-फल प्रभु आज्ञा से समर्पण करने से तमाम इन्द्रियों के भोगों से उपरामता प्राप्त होती है। जो सर्व दोषों को नाश करने वाली और परम पवित्रता आत्म-स्थिति के देने वाली है।

२६. बुद्धि दृढ़ सत परायणता से परम शुद्धि को प्राप्त होती है। और मन इन्द्रियों के तमाम विकारों पर विजय हासिल कर लेती है। और अपने आपमें सावधान होकर के निरद्वन्द स्थिति को प्राप्त होती है। यानी परम तत्व आत्मा में लीन हो जाती है। यह ही अवस्था जीवन उद्धार का असली सरूप है।

२७. इन्द्रियों के भोगों में उपरामता हासिल करनी और सत पुरुषों के सत विचार द्वारा अपनी बुद्धि को निर्मल करके सत सरूप के दृढ़ परायण होना ही अपने आप को सही समझना है और ऐसे यत्न-प्रयत्न करते-करते तमाम दुरमत्त जाल का अभाव हो जाता है। और बुद्धि केवल ज्ञान सरूप में नेहचल होती है। जो अकृत सरूप परम शान्ति है।

२८. जीवन यात्रा में परम धन, परम खोज, परम सूझ, परम यत्न, परम आसरा, परम उच्चता, परम विद्वत्ता केवल एक अविनाशी स्वरूप जीवन-शक्ति आत्मा के दृढ़ परायण हो करके तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता

हासिल करनी ही है। जो परम उद्धार के देने का साधन है, जो गुणी पवित्र निश्चय से ऐसे कल्याणकारी मार्ग में दृढ़ हुआ है; उसका जीवन धन्य है। दूसरों के वास्ते आदर्श स्वरूप है।

२९. अन्तर निश्चय में केवल सत्नाम का निदिध्यासन करना और शरीर द्वारा निष्काम भाव यानि अकर्त्ता भाव से दूसरे जीवों की सेवा करनी ही तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता के देने वाली है। ऐसे सत् यत्न में नित्य ही प्रवीण रहना गुणी पुरुषों का धर्म है क्योंकि शरीर विनाश की तरफ़ जा रहा है। इससे सत् अर्थ परम-पद को प्राप्त कर लेना ही नाशवान शरीर का यथार्थ लाभ है।

३०. नित्य ही जीवन-यात्रा में सत्-पद प्राप्ति का सत्-यत्न धारण करते रहना परम उच्च स्थिति है; यानि अधिक-से-अधिक पवित्र आहार, व्यवहार और अपने आप में अधिक सादगी को धारण करके और तमाम नुमायशी और अय्याशी जीवन यात्रा से परहेज़ करना और सत् स्वरूप प्राप्ति का अधिक अनुराग प्राप्त करना चाहिए, जिससे तमाम मिथ्याकार वासना का नाश होता है और शीघ्र ही सत्-पद की प्राप्ति होती है। ऐसे अधिक यत्न से मानसिक दोषों से पवित्रता प्राप्त करके अपने आपका सही रक्षक बनना ही परम शूरवीरता है।

३१. इस जीवन स्वरूप संसार मार्ग में पूर्ण पवित्र बुद्धि से इस यात्रा को समझ करके अखण्ड प्रतीति से एक सत्-तत्व के

परायण होना चाहिए और नित्य ही हृदय में उस परम-तत्व का स्मरण करना चाहिए, जो जीवन-स्वरूप शरीर को प्रकाश कर रहा है, और आनन्द स्वरूप है। तमाम शारीरिक कर्म उस महाप्रभु की आज्ञा में समर्पण करने का निश्चय दृढ़ करना चाहिए और नित्य ही मन, वचन और कर्म करके दूसरे जीवों की सेवा की भावना को दृढ़ करना चाहिए, और शारीरिक विनाश को निश्चय करके अधिक-से-अधिक उद्यम धारण करके निर्द्वन्द स्वरूप अविनाशी तत्व का बोध प्राप्त करने में स्वतन्त्र रहना चाहिए। यह ही अवस्था परमधाम है।

३२. यथार्थ लाभ इस शरीर का ये ही है, कि निश्चय में प्रभु भक्ति और शरीर द्वारा परोपकार, निष्काम भाव सहित धारण किया जावे, तब ऐसे सत्-यत्न से ही जीव परम पद को प्राप्त कर सकता है। तमाम गुणी पुरुषों का आदर्श जीवन विचार करके अपने जीवन को नित्य ही सत्-मार्ग में दृढ़ करके, अपने आपका निर्मल बोध प्राप्त कर लेना चाहिए; जो परम शान्ति स्वरूप है।

३३. इस तृषावन्त संसार में सत्-शान्ति को प्राप्त करना ही असली जीवन का ध्येय है; मगर अज्ञान वश हो करके, अविनाशी स्वरूप को भूल करके बुद्धि नाशवान शरीर में परम-सुख अविनाशी की तलाश करती है; ऐसे अज्ञान-मयी जीवन से जाग्रत हो करके नाशवान शरीर के मद को त्याग करके नित्य ही सत-श्रद्धा सहित अपने आपको

एक अविनाशी स्वरूप के परायण करके नित्य ही शरीर द्वारा सत्-निदिध्यास को धारण करना चाहिए; जो परम-सिद्धि, निर्भय-पद के देने वाला है।

३४. केवल सत्-स्वरूप के परायण होकर तमाम संसार उसी एक परम-तत्व अखण्ड आत्म-स्वरूप का चमत्कार जान करके, सब जीवों की निष्काम भाव से यथाशक्ति सेवा की दृढ़ता को धारण करते हुए और हृदय में एक उस अखण्ड शब्द आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते हुए जो जीवन-यात्रा व्यतीत करते है, वह ही महागुणी परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं और उनका जीवन तमाम विश्व के वास्ते कल्याणकारी है। और वह ही निर्मल उद्धार के स्वरूप के बोधक हो करके आदर्श स्वरूप हुए हैं, उनका जीवन अति दुर्लभ है।

३५. बुद्धि कर्त्तापन की आसक्ति में जो अति आरूढ़ हुई हुई है; इस अवस्था को प्राकृतिवाद, असतवाद, अहंकारवाद, अज्ञानवाद, नास्तिकवाद और भ्रमवाद आदि नामों करके पुकारा जाता है; यानि कर्त्तापन की आसक्ति को धारण करके, त्रिगुणी वासना के जेर-असर हो करके, नाना प्रकार के कर्म और कर्मफल द्वन्द संकल्प रूपी संसार को कल्पती हुई सूक्ष्म स्थूल तात्विक सृष्टि में भ्रमती है और अभय-शान्ति की खातिर अधिक-से-अधिक यत्न करती है; मगर कर्त्तापन जो संसार का बीज स्वरूप है; इससे पवित्र होने के बगैर कर्म और कर्मफल द्वन्द के राग-द्वेष

में नित्य ही चलायमान होती रहती है; ये ही अवस्था परम दु:ख का स्वरूप है।

३६. इस कर्त्तापन अन्धकार के नाश करने के वास्ते सहज उपाय यह ही है, कि सत्-स्वरूप, आत्म-तत्व जो घट-घट प्रकाश कर रहा है, उसको कर्त्ता-हर्त्ता जान करके, अपने कर्तापन अभिमान का त्याग करे–ये ही भावना आस्तिक वाद, सत्वाद, ईश्वरवाद और ज्ञानवाद का स्वरूप है।

३७. ज्यों-ज्यों बुद्धि परम पवित्र निश्चय से सत्-स्वरूप आत्मा को कर्ता-हर्ता जान करके अति प्रेम से स्मरण में दृढ़ होती है, त्यों-त्यों कर्मफल द्वन्द की आसक्ति से निर्मल होती जाती है, और सत्-अनुराग के बल से तमाम शारीरिक विकारों से पवित्रता को प्राप्त होती है; ऐसी भावना को ही समर्पण बुद्धि कर्मयोग या भक्तियोग आदि नामों करके उच्चारण किया गया है।

३८. तमाम कर्म वासना की जड़ कर्तापन ही है। इस वास्ते बुद्धि सत् परायणता के बल से अपने कर्तापनको त्याग करके केवल सत्-स्वरूप आत्मा को ही कर्ता जब निश्चय करके जानती है, उस वक्त तमाम भोग-वासना से पवित्रता को प्राप्त हो करके कर्मफल द्वन्द से असंग हो जाती है; यह ही अवस्था जीवनमुक्त पद है।

३९. अधिक दृढ़ निश्चय से कर्तापन अन्धकार से पवित्र होने का सत्-यत्न धारण करना ही गुरुमुख मार्ग है। इस वास्ते परम प्रयत्न से जब बुद्धि एक ईश्वर शक्ति को ही

कर्ता-हर्ता जानती है; उस वक्त तमाम वासना से पवित्र हो करके अपने अन्तर में सत्-स्वरूप के बोध को प्राप्त होती है; यानि निराकार, अजन्मा, अकर्म निर्वास, निर्द्वन्द, अखण्ड, सर्वज्ञ, सर्व असंग और नित्य स्वरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करके तमाम शारीरिक वासना से निर्बन्धन हो जाती है, और अपने-आप में अकर्ता स्वरूप हो करके विराजती है। यह ही अवस्था परम सिद्धी का स्वरूप है; ऐसी निर्मल अवस्था को जब बुद्धि प्राप्त होती है, तब पूर्ण-तृप्ति, पूर्ण-शान्ति पूर्ण-अनुभवता, पूर्णविज्ञान को अनुभव करके, उसी परम तेज स्वरूप में लीन हो जाती है, ऐसी अवस्था को ही निर्वाण-शान्ति कहा गया है। सो ऐसे परम बोध जीवन के सही निर्णय को समझ करके नित्य ही सत्-पद प्राप्ति का यत्न करते हुए, अपने मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी ही सत्-मार्ग की दृढ़ता है। इस वास्ते तमाम गुणी पुरुष अपने जीवन उन्नति के सही चाहक हो करके, परम दृढ़ निश्चय से सत्-परायण होने का यत्न करें; जिस करके मनुष्य जन्म की सही सफलता, निर्भय शान्ति प्राप्त होवे। ईश्वर सुमति देवे।

प्रसंग परम कल्याण बोध समाप्त हुआ।

श्रीनगर ११-५-५२

(काशमीर)

जीवन सुधार

वचन नं० १—जन्म से लेकर हर एक जीव अपने-अपने शरीर के बन्धन में आसक्त होकर विचरता है, यानी शारीरिक कर्म जिसका फल द्वन्द सरूप दुख व सुख है। उसमें बन्धायमान होकर दुख से छूटने की ख़ातिर और सत शान्ति प्राप्ति की ख़ातिर लमह ब लमह अनेक प्रकार की कामनाओं को धारण करके यत्न करता है। मगर द्वन्द सरूप कर्म चक्र में रंचक मात्र भी सत शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही जीवन सरूप माया का अद्भुत जाल है।

वचन नं० २—ऐसे जीवन यात्रा के भेद को जब तक यथार्थ सरूप से न जाना जाये, तब तक निर्मल उन्नति का सत यत्न प्राप्त होना अति कठिन है। इस वास्ते गुणी पुरुष का परम धर्म है कि इस खेदयुक्त जीवन यात्रा के सही भेद को समझ करके सत मार्ग, जो सत शान्ति के देने वाला है, उसमें अपने-आपको दृढ़ करे, यह ही यथार्थ यत्न मानुष जीवन का परम लाभ है।

वचन नं० ३—चूँकि शारीरिक कर्म छिन-छिन में तबदील होने वाला है, और साथ ही शरीर भी तबदीली युक्त है, इस वास्ते महज़ शारीरिक भोगों की प्राप्ति कर लेनेसे

कभी भी सत शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। ऐसी मूढ़-मति को धारए करके शरीर विनाश के समय सबको परम दुख प्राप्त होता है। ऐसा जीवन का भेद समझना ही असली विवेक है, जिसके जानने से हर वक्त मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करके सत अनुराग में दृढ़ता होती है।

वचन नं० ४—शरीर और शारीरिक कर्म तबदीली युक्त हैं, इस वास्ते इनमें सत शान्ति का प्राप्त होना जानना महज़ अधिक मूढ़ता है, जो कि हर वक्त परम अशान्ति और दुख के देने वाली है।

वचन नं० ५—ऐसी शारीरिक यात्रा को समझ कर नित ही अपने पवित्र निश्चय को शरीर की प्रकाशक शक्ति, जिसको आत्मा, सत, आनन्द, अकाल, ईश्वर और जीवन शक्ति आदि अनन्त नामों से सत पुरुषों ने गायन किया है, में दृढ़ करना चाहिए। ऐसा निश्चय ही सत वाद या आस्तिकपन है।

वचन नं० ६—सार विचार यह है कि शरीर और शारीरिक कर्म भोग अति बन्धन इस जीव को है, जिससे अधिक त्रिषए की अग्नि में जलता रहता है, और सत शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है। ऐसे परम कलेश से छूटने के वास्ते एक परमेश्वर का पूर्ण निश्चय से विश्वासी हो करके तमाम शारीरिक कर्मफल को उसकी आज्ञा में छिन-छिन

विषै समर्पण करना ही द्वन्द खेद से छुटकारा देने वाला यत्न है। इसो परम पवित्र निश्चय को ही भक्ति कहते हैं।

वचन नं० ७—निर्मल भावना से प्रभु परायण होकर तमाम कर्म उसकी आज्ञा में समर्पण करने छिन-छिन विषै प्रभु नाम हृदय में चिन्तन करना और तमाम शारीरिक सुखों में समान हालत से विचरना ऐसा सत विश्वास ही सत शान्ति आत्म साक्षात्कार के देने वाला है।

वचन नं० ८—जिस गुणी पुरुष को ऐसा पवित्र भाव प्राप्त हुआ है यानी अपने-आप को सत परायण करने के यत्न में जो दृढ़ हो रहा है, वह ही आस्तिक है और आत्म-साक्षात्कार यानी ब्रह्म शब्द को अनुभव करके नेह कर्म सरुप अखण्ड शान्ति को प्राप्त होता है। यह ही अवस्था परम तृप्ती और परम शान्ति है यानी तमाम शारीरिक विकारों से निर्मल हो करके बुद्धि सत सरूप अविनाशी शब्द में नेहचलता को प्राप्त होती है। यह ही दृढ़ता परम तप और अभ्यास है।

वचन नं० ९—जीवन यत्न की सार यह है कि एक प्रभु परायण होकर के तमाम शारीरिक कर्म निष्काम भाव से धारण करते हुए इस जीवन यात्रा को व्यतीत करना, ऐसे सत यत्न से ही परम सिद्धि निर्वाण शान्ति प्राप्त होती है। और यह ही आन्तरिक यत्न तमाम सत पुरुषों का है।

वचन नं० १०—हर वक्त सत विश्वास और सत निध्यासन को धारण करके अपनी अनर्थिक कामनाओं का त्याग करके अपने अन्तर में सत सरूप अविनाशी तत्त्व का स्मरण-ध्यान करते हुए सत मर्यादा यानी पवित्र कर्म निष्काम में धारणा करके अपने जीवन को व्यतीत करना ही जीवन का परम सुधार है। इससे सर्व का भी कल्याण है। सब प्रेमी पूर्ण निश्चय से विचार करके अपने जीवन की निर्मल सफलता प्राप्त करें।

"आरती"

तूँ पार ब्रह्म परमेश्वर, तीन काल रछपाल ।
नित पाऊँ शरणागति, सत चरण कंवल दयाल !!
तूँ नित पतित उद्धार है, पूरण प्रभ जगदीश ।
मोह माया संकट हरो, दीजो ज्ञान संदेश !!
नित ही तेरे चरण की, मन में रहे प्रीत ।
तूँ दाता दातार है, पुरुषोत्तम सुख रीत !!
पवन पानी बैसंतर, धरती और आकाश ।
सबको सरजनहार तूँ, आदि पुरुष अविनाश !!
घट-घट व्यापक तूँ परमेश्वर, सरब जियाँ आधार ।
अनमति कूकर को राख लें, किरपानिध करतार !!
काल कर्म जाये दूषना, खल बुद्धि हरो अज्ञान ।
सत शरधा पाऊँ चरण की, अखण्ड प्रेम चित ध्यान !!
दीनानाथ दयाल तूँ, पल-पल होत सहाये ।
कीरत सांचे नाम की, मन तन आए समाए !!
अन्तर का सब खेद हरो, दीजो सत विश्वास ।
शरणागत हूँ मन्दमती, घट अन्तर करो प्रकाश !!
अन्तर गत सिमरण करु निरन्तर धरु ध्यान ।
घट घट में दर्शन करूं आद पुरुष भगवान !!
तूँ साचा साहिब सर्ब प्रकाशी, शब्द रूप अखंड ।

गुणी मुनी स्तुति करें, तन मन पायें आनन्द !!
होवें दयाल तूँ सत परमेश्वर, देवें धीर अपार ।
निमख-निमख सिमरण करूँ, चित चरण रहे आधार !!
काया अन्तर प्रत्यक्ष होवें, नाद रूप बिसमाद ।
पल-पल कीजूं आरती, तन मन तजूँ वियाध !!
जग आवन सुफला होवे, तेरी आज्ञा मन में ध्याऊँ ।
अन्तरगति करूँ आरती, भव दुस्तर तर जाऊँ !!
अन्धमति मूढ़ानित प्रति, तेरे चरणीं करे पुकार ।
"मंगत" माँगें दीनता, सत धर्म सुख सार !!

"समता मंगल"

समता धर्म हिरदे रसे, विष ममता होवे नाश ।
सत् सरूप परमात्मा, जल थल पाऊँ प्रकाश !!
सब जीवों से प्रेम हो, तन मन सेवा धार ।
समता साधन पायके, नित परसां जय-जयकार !!
सत करम सत निश्चय, निर्मल पाऊँ विचार ।
"मंगत" समता धार के, जीत चलो संसार !!

अरदास

ब्रह्म सत्यम् सरब आधार। करो अरदास पावें जयकार ॥
पुरुष अनादी नित सम परकाश। सरब जियाँ में करे निवास ॥
सब साजन मिल प्रेम से गायो। अलख अपार मनमांहि धियायो ॥
नित आदेस नित प्रीत कमाओ। रख विश्वास अभयपद पाओ ॥
अजर अमर शकति निर्वाणी। नित आनन्द परम सुखखानी ॥
जो जन प्रीत से नाम धियाए। संकट नास परमगति पाए ॥
अतुल शकति सरब का स्वामी। सरब ज्ञाता सो पारगरामी ॥
साध संगत मिल शबद धियाओ। पूर मनोरथ निज रूप समाओ ॥
सरब-व्यापक सरब अतीता। तीनकाल सो रहे पुनीता ॥
घट-घट की सब बनत बनाए। अपरमपार पुरुष अगाहे ॥
नेःचल बुद्धी तत्त ज्ञान विचारो। सत् परकाश जोत निर्धारो ॥
कर्त्ता हर्त्ता सरब सुखदानी। ब्रह्म सत्यम् जप पद निर्वाणी ॥
सूक्षम अस्थूल इक सूत पिरोई। सरब आधार शकित नित सोई ॥
मन पुनीत मुख बोल पुनीता। अखय शबद नित जाप जगदीशा ॥
करो परणाम तिस पुरुषके चरणा। नित रख्यक प्रभु कारण करना ॥
पल पल घड़ी जप नाम सुखरासी। भाव भगति ले मिटे चौरासी ॥

पूरण पुरुष को बन्दिये, नित धर निर्मल चीत।
'मंगत' अरदास बखानिये, रख सत्गुरु की परतीत ॥

